इस अंक में

लमही

वर्ष: 9 • अंक: 3 • जनवरी मार्च 2017

पड़ताल

हिन्दी पट्टी में आलोचनात्मकता का अवसान और लेखक संगठन –डॉ. शंभु गुप्त 5

नवस्त्रीवाद : जमीन से पृथक अंतर्विरोध –उमाशंकर सिंह परमार 13

रंगभूमि

विचार, पक्षधरता और हस्तक्षेप के नाटककार राजेश कुमार –राकेश 18

तफ्तीश अर्थात् व्यवस्था की राजनीति –देवेन्द्रराज अंकुर 19

व्यक्तित्व

यह वह इतिहास तो नहीं मारीशस की डायरी –देवेन्द्र चौबे 21

साक्षात्कार

एक अव्याख्येय शक्ति जो हिंसा में आनंद और आनंद में हिंसा महसूस करती है 25

(प्रख्यात वरिष्ठ आलोचक नित्यानंद तिवारी से युवा लेखिका नेहा मिश्रा की बातचीत)

मानसरोवर

भद्रलोक –दीपक शर्मा 35

कोल्हू –शैलेय 38

नीम का पेड़ –राजेश झरपुरे 41

ठौर–ठिकाना –दिव्या शुक्ला 43

नियति –राजा सिंह 49

भरोसा अभी कायम है –अंजू शर्मा 59

अंतिम साक्ष्य –सुरेन्द्र नायक 64

एक एकस्ट्रा सैंडविच और आधे पौन घंटे का लंच –शेफालिका कुमार 68

कविता कीर्ति

संजीव बख्शी/74, कात्यायनी/74, नरेन्द्र पुण्डरीक/75, गौतम चटर्जी/77

जयप्रकाश मानस/79, प्रेमरंजन अग्निमेष/80, सर्वेश सिंह/81, राजकिशोर राजन/82, शंकरानंद/83, रमा यादव/84, अशोक सिंह/86

कुलेल

तवज्जो लीजिए तवज्जो दीजिए –सुशील सिद्धार्थ 88

यात्रा संस्मरण

रोमा रोलां का फ्रांस –संतोष श्रीवास्तव 90

उपन्यास अंश

सभ्यताएं यहां पहुंच कर शर्मिन्दा खड़ी है –सूर्यबाला 95

बिन ड्योढ़ी का trr —उर्मिला शुक्ल 100

अध्ययन कक्ष

इन पन्नों में बहुत कुछ है —सुषमा मुनीन्द्र lOS
(किरण अग्रवाल के कविता संग्रह पर)

मुक्तिपथ की धूसर परतें —प्रताप दीक्षित 107
(इंदिरा दांगी के नाटक पर)

संभावनाओं के क्षितिज का विस्तार —अमिता पाण्डेय 108
(रीता दास राम के काव्य संग्रह पर)

लोक साहित्य की प्रासंगिकता का संधान अनिल राय 10
(विद्या सिन्हा की किताब पर)

आत्मालाप : मजाक के कलेवर में संजीदगी —सौरभ शेखर 112
(कमलेश पाण्डेय के व्यंग्य संग्रह पर)

बौद्धिक हंस का एकान्तिक रोदन —मुक्ता टण्डन 113
(सिनीवाली के कहानी संग्रह पर)

समय के संत्रास पर बजता झुनझुना जगन्नाथ प्रसाद दुबे 115
(रमेश प्रजापति के काव्य संग्रह पर)

समाज के दहकते प्रश्नों का दस्तावेज़ —ऊषा बनसोडे 117
(डॉ. अर्चना प्रकाश के कहानी संग्रह पर)

मज़ाज़ पर उम्दा काम —[illegible] 119
(नया दौर के मज़ाज़ विशेषांक पर)

आवरण : बंशी लाल परमार

प्रधान संपादक* o विजय राय
संपादक* o ऋत्विक राय
संयुक्त संपादक* o ऋतिका
o गीतिका शर्मा
o वत्सल कक्कड़

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय संपर्क
3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर लखनऊ—226010
ईमेल : vijairai.lamahi@gmail.com, मो0 : 9454501011
सामान्य अंक का मूल्य : 15/- रुपये मात्र
आजीवन सदस्यता शुल्क : 1000 / —रुपये मात्र

''लमही का वेब अंक आप Not Nul (www.notnul.com) पर पढ़ सकते हैं।''

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

आजीवन सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा 'लमही' (LAMAHI) के नाम से इस पते पर भेजें— 3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ—226010 (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे त्रैमासिक पत्रिका 'लमही' और उसके संपादक—मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ होगा

''लमही'' की स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक मंजरी राय के लिए श्रीमंत शिवम् आर्ट्स, 211 पाँचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 से प्रकाशित।

संपादक—ऋत्विक राय* *सभी अवैतनिक

वर्ष: 9. अंक: 3. जनवरी मार्च 2017

लोक की प्रासंगिकता का र

■ अनिल राय

लोक साहित्य, परंपरा और परिदृश्य विद्या सिन्हा द्वारा की गई एक मौलिक एवं नई पहल की विशेष रूप से ऐसे समय में जब सर्वत्र भूमंडलीकरण, विश्वग्राम, उपभोगकतावाद, बाजारवाद, दलित–विमर्श, स्त्री विमर्श एवं उत्तर आधुनिकता जैसे विषयों पर चिंतकों विमर्शकारों के बीच बहसें जारी हैं, लेखिका का लोक साहित्य की ओर मुड़कर देखना अपने आप में बहुत कुछ संकेत करता है। बाजारवादी ताकतें समाज को लगातार जिस दिशा में धकेल रही हैं वहाँ अपराध, भय उन्माद, अस्थिरता, तनाव, संवेदनहीनता एवं घोर भौतिकता जैसी विकृतियों से मनुष्य क्षण भर के लिए भी स्वयं को मुक्त नहीं पा रहा है। इस इंटरनेट युगीन मनुष्य को अपने परिवेश व समाज को समझने व उससे किसी प्रकार का रिश्ता कायम रखने का न तो अवकाश है और न ही कोई इच्छा।

वर्तमान युग की इन विकृतियों से टकराने व इनसे सामंजस्य स्थापित करने के लिए विद्या सिन्हा भारतीय लोक साहित्य को एक समाधान के रूप में देखती हैं। उन्हें लोक साहित्य में निहित क्षेत्रीयता अथवा आंचलिकता की शक्ति पर कोई संदेह नहीं है– "एक तो लोक साहित्य व संस्कृति समूह, समुदाय के भीतर से व्यक्ति की अस्मिता को उभारते हुए सामुदायिकता की शक्ति को रेखांकित करते हैं। इसमें लोक के पास विवेक की ऐसी अद्भुत छत्री है जिसमें अर्थहीन और अनावश्यक को छोड़कर प्रासंगिक और मूल्यवान को जोड़कर आगे बढ़ जाने की क्षमता है।" लेखिका के अनुसार आज हम जिस वैश्विकता पर बहसें कर रहे हैं, जिस राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियाँ लगातार आयोजित की जा रही उसका मूल कहीं न कहीं क्षेत्रीयता में ही है। पारंपरिक मू से युक्त संपन्नता मनुष्य के वर्तमान अस्तित्व से जुड़कर उसे निजी पहचान देती है। त्रासदी यह है कि लोक स्वहित्य, ए सदियों की संचित पूंजी है, आज की संस्कृति में लगातार उपेक्षित होता जा रहा है। सूचना तकनीक की जो क्रांति यहाँ आई है उसकी कृपा से एक बटन के दबाते ही सूचनाओं एवं जानकारियों की बाढ़ सी आ जाती है किंतु ज्ञान का अभाव हमें एक विचित्र प्रकार की रिक्तता से भर देता है। विज्ञान और तकनीक की रेल में विज्ञान को पिछड़ते देखकर मन में एक टीस सी उठती है। तकनीक–निर्भरता के कारण जीवन जिस तरह यांत्रिक होता जा रहा है उसके गंभीर परिणाम सामने आने लगे हैं। इन विसंगतियों के बीच संतुलन बनाने के लिए लेखिका यहाँ सामाजिक इकाइयों को पुनर्स्थापित करने की जरूरत को रेखांकित करती हैं। इस प्रक्रिया में सामूहिकता व सहभागिता की ओर पुनः रुख करना समय व समाज की अनिवार्यता है।

भारत में लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद से शुरू हुई साहित्य–सृजन की यह धारा अविच्छिन्न रूप से आज तक बह रही है। वाल्मीकि रामायण, नैवषीय चरितम्, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र, बैताल पचीसी, हितोपदेश आदि अनेक ऐसे ग्रंथ हैं जिनका लेखिका ने भारतीय लोक साहित्य के स्रोत–भंडार के रूप में उल्लेख किया है। समीक्ष्य पुस्तक में लोक साहित्य की परंपरा और उसके विकास की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। भारतीय लोकसाहित्य के शोध और संकलन की दिशा में महत्वपूर्ण काम करने वालों में कर्नल जेम्स टाड, क्रेवेज एस. हिस्लप, मिस फ्रेजर, चार्ल्स इ. गोवर, डाल्टन जी. एच. डैमेंट, ई. जे. रॉबिंसन तथा विलियम क्रुक के अतिरिक्त संचिका ने भारतीय शोधकर्ताओं में डॉ. हीरालाल, सर आशुतोष मुखर्जी, शरच्चंद्र राय, झवेर चंद मेघाणी, रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी एवं वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे विद्वानों के अमूल्य योगदान की ब्यौरेवार विवेचना की है।

लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के सामर्थ्य–परीक्षण की प्रक्रिया में विद्या–सिन्हा ने स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास की भी पूरी छानबीन की है। 1857 का विद्रोह आधुनिक भारत की पहली ऐसी राष्ट्रीय घटना थी जिसकी उस समय प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में अभिव्यक्ति की एक लहर सी चली थी। चाहे वह बुंदेली भाषा हो या भोजपुरी, मैथिली हो या अवधी, सभी भाषाओं में इस विद्रोह के गीत रचे गए। अपनी सहजता के कारण ये गीत आम आदमी के कंठ तक ऐसे उतरे कि आज तक इनकी अनुगूंज दूर–दराज के क्षेत्रों में सुनाई पड़ जाती है। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारत पर किए जा रहे अत्याचारों व शोषणों से जहाँ एक और नेता, बुद्धिजीवी–विचारक मुक्ति के लिए माथा पच्ची कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर लोक–साहित्य अपने भीतर इन तमाम गतिविधियों को आत्मसात कर गाँव–गाँव, गली–गली में जन–जागृति की लहर फैला रहा था। देश की ग्रामीण–अपढ़ जनता को जगाने व एकसूत्रता में बाँधने की जो भूमिका लोकगीतों ने निभाई वह किसी अन्य माध्यम के वश की बात नहीं थी। गांधी के स्वाधीनता आंदोलन में प्रवेश के पश्चात् लोक–साहित्य में अतीत–गौरव व राष्ट्र–प्रेम की जो धारा बही वह अद्भुत थी। सबसे अधिक हैरान करने वाली बात यह थी कि अलग–अलग क्षेत्रीय बोलियों एवं भाषाओं में राष्ट्र–प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले लोक गीतकारों को न तो किसी–तरह की औपचारिक दिशा दी गई थी और न ही इनका परस्पर कोई संपर्क था। लेखिका की

यह स्थापना नहीं है' इन
साक्ष्यों से और होती दृष्टि में क्षेत्रीय
लोकभाषाओं में व ज अपार क्षमता है
जिसका उपयोग हिंदी भाषा एवं रा के सशक्तीकरण
के लिए किया । है। वि की लोकभाषा के
सामर्थ्य का गह इसीलिए इस पुस्तक के माध्यम से
उन्होंने लोकभाष त्य की भाषा के रूप में अपनाने की
जोरदार पैरवी क समर्थन में उन्होंने भक्तिकालीन भाषा
का उदाहरण प्र है। लेखिका के अनुसार जब–जब
साहित्य की भा ा रही है, तब–तब साहित्य अपनी
संवेदना को वि क तक अनुगुंजित करता रहा है।
इतिहास ने यदि को इतना ऊँचा आसन दिया है तो
इसकी एक बड़ी ी भाषा भी है। तत्कालीन शास्त्र सिद्ध
संस्कृत भाषा के ; होने का जोखिम उठाना लोकभाषा
के हैं यश की बा ही वह इसमें सफल भी हुई। सच्चाई
भी यही है कि बे भाषा में संप्रेषणीयता की राह आसान
होती है क्योंकि । समय में यह अधिक से अधिक लोगों
के अंतर्मन में उ मता रखती है।

समीक्ष लेखिका ने भारतीय लोक साहित्य के
विविध रूपों का पूर्ण अध्ययन–विश्लेषण प्रस्तुत करते
हुए लोकगीत, ल ोककथा, लोकनाट्य, लोक सुभाषित
आदि विधाओं क कास प्रस्तुत किया है। महत्त्वपूर्ण बात
यह है कि लेखि द्देश्य यहाँ लोक–साहित्य एवं उसकी
विधओं का ऐति रा देना नहीं है बल्कि यह स्थापित
करना है कि लो चाहे जिस विधा में हो इसमें साधारण
आदमी या लोक व उसकी अनुभूतियों के प्रति गहरी
संवेदना होती है– । विधाओं में लोक की अनुभतियों और
चिंतन–शक्ति व ठ अभिव्यक्ति करने वाला यह लोक
साहित्य केवल । इतिहास का विषय नहीं है। इसका
जीवंत और व्याव । हमारे जीवन से है और रहेगा। भले
ही मनोरंजन के र ग्रमों की चमक– दमक का तात्कालिक
आकर्षण हमें अ ींचता रहे, लोक साहित्य में मौजूद
जीवन की जड़ों ामें जिजीविषा की अदभुत शक्ति और
ऊर्जा से भरने व रखता है।'

भारत क्षेत्रीय भाषाएं हैं उन सबमें रचित
संस्कार गीतों में क अदभुत साम्य को लेखिका द्वारा
रेखांकित किया तीजे के जनम पर ननद का अपनी
भाभी को बधाई व यदि भोजपुरी में 'बधइया लाइली
ननदी मोरे सा रूप में व्यक्त हुआ है तो यही भाव
बुंदेलखंडी में 'ब नदी अरे श्यामलिया' के रूप में। इसी
प्रकार यहाँ लेरि भिन्न क्षेत्रीय बोलियों एवं भाषाओं में
रचित अनेक ऐ गीतों का संकलन किया है जिनमें
मौजूद समानता ल देने

लेखि पुस्तक पुरी लोकगीतों की
संवेदना व इनके अपेक्षा क महत्त्व दिया है।
भोजपुरी भाषा के का भ जुड़ाव, इसकी महती
समझ व इसकी मृतदि के मुख्य कारण रहे
होंगे। जिन ां का यहाँ किया गया है

उनमें ज तक के सभी संस्कारों, चक्की चलाने
से लेकर के समस्त कर्म–विधान, ऋतुओं के
सौन्दर्य र मन पर उनके प्रभाव तथा पति–पत्नी
भाई–बहन मा–बेटा आदि पारिवारिक संबंधों एवं उनकी संवेदनाओं
का पूरा विस्तार व्याप्त है। विवाह संस्कार पर देवों–पितरों को
निमंत्रित करने की प्रथा, विवाह के अवसर पर वर या वधू के घर
इमली–घोटाई की प्रथा, विवाहोपरांत कोहबर–गमन, बेटी की
भावुकतापूर्ण विरदी आदि प्रथाओं में भोजपुरी संस्कार -गीतों को
अपार समृद्धि दी है। इन संस्कार गीतों की सबसे बड़ी खासियत
यह है कि शिव, पार्वती, सीता और राम जैसे पौराणिक पात्र जब
इन गीतों में उतरते हैं तो वे भी मानवीय शक्तियों एवं सीमाओं
में पूरी तरह सराबोर दिखाई पड़ते हैं। भोजपुरी लोक साहित्य का
संसार केवल मनुष्य तक ही केंद्रित नहीं है। लोक मानस अपने
परिवेश के प्रति भी कम सजग और संवेदनशील नहीं रहा है। इन
लोकगीतों में ऐसे अनेक जीवंत स्थल अपनी सहजता के साथ
मौजूद हैं जिनमें प्रकृति मानवीय भावों की सहचरी बनकर व्यक्त
हुई है। ऋतुओं से संबद्ध फाग, चैती, कजली आदि गीतों एवं
जंतसार, रिडोला, हुढ आदि के पारंपरिक गीतों में जीवन का
असीम विस्तार व्याप्त है। इसमें व्यक्त पात्रगत भाव किसी एक का
न होकर पूरे ... का बन जाते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश से
लेकर सुदूर बिहार तक विस्तारित लोकगीतों का यह भोजपुरी
साम्राज्य कर्म संस्कार एवं उत्सव गीतों से भरा पड़ा है जिसकी
लेखिका ने ब ोयोग से यहाँ विवेचना प्रस्तुत की है।

जीवन से लोक चेतना, लोक चेतना से
लोक साि ाहित्य से लोक मानस का परिष्कार और
इसी रास्ते रण का निर्माण होता है। लोकजीवन की
अभिव्यक्ति ड़े माध्यम कला और साहित्य होते हैं। इस
पुस्तक में सर्वत्र यह स्थापित किया है कि लोक
साहित्य म ा की संवेदना को गहराई में उतारकर
आत्मसात कृतिगत योग्यता होती है। चूँकि लोक
अपनी सम ाक सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक
परिस्थिति त हुए बिना नहीं रहता इसलिए लोक
साहित्य व । के लिए उसमें लोक–जीवन के प्रति
सवीकार अनिवार्य है।

ाषा सर्वथा विषय के अनुकूल है। क्षेत्रीय व
आंचलिक ो साधकर एक प्लेटफॉर्म पर लाने की
चुनौती के बखूबी स्वीकार किया है।

क्ष्य पुस्तक के केंद्र में भारतीय लोकमानस
है, जो वि ठ व क्षेत्रीय विविधाओं के बावजूद एक है।
इस समूचे लेषण के मूल में लेखिका की यही धारणा
झलकती य लोक साहित्य वर्तमान संदर्भों में भी
अप्रासंगि नहीं है। आज की अतिशय बाजारवादी–
उपभोक्त अपनी शर्तों पर परिवार व समाज को
पारिभाि है।, जिनमें मूल्यों व संवेदना का 'स्पेस'
लगातार ा है। ऐसे समय में लोक–साहित्य की
शक्ति ए र लेखिका का ध्यान जाना स्वाभाविक ही
है। उन के लोक–साहित्य की आंचलिकता को
इसकी र न देखकर सामर्थ्य में देखा जाना चाहिए